राधामोहन गोकुल की
अप्राप्य रचनाएँ

भाग-1

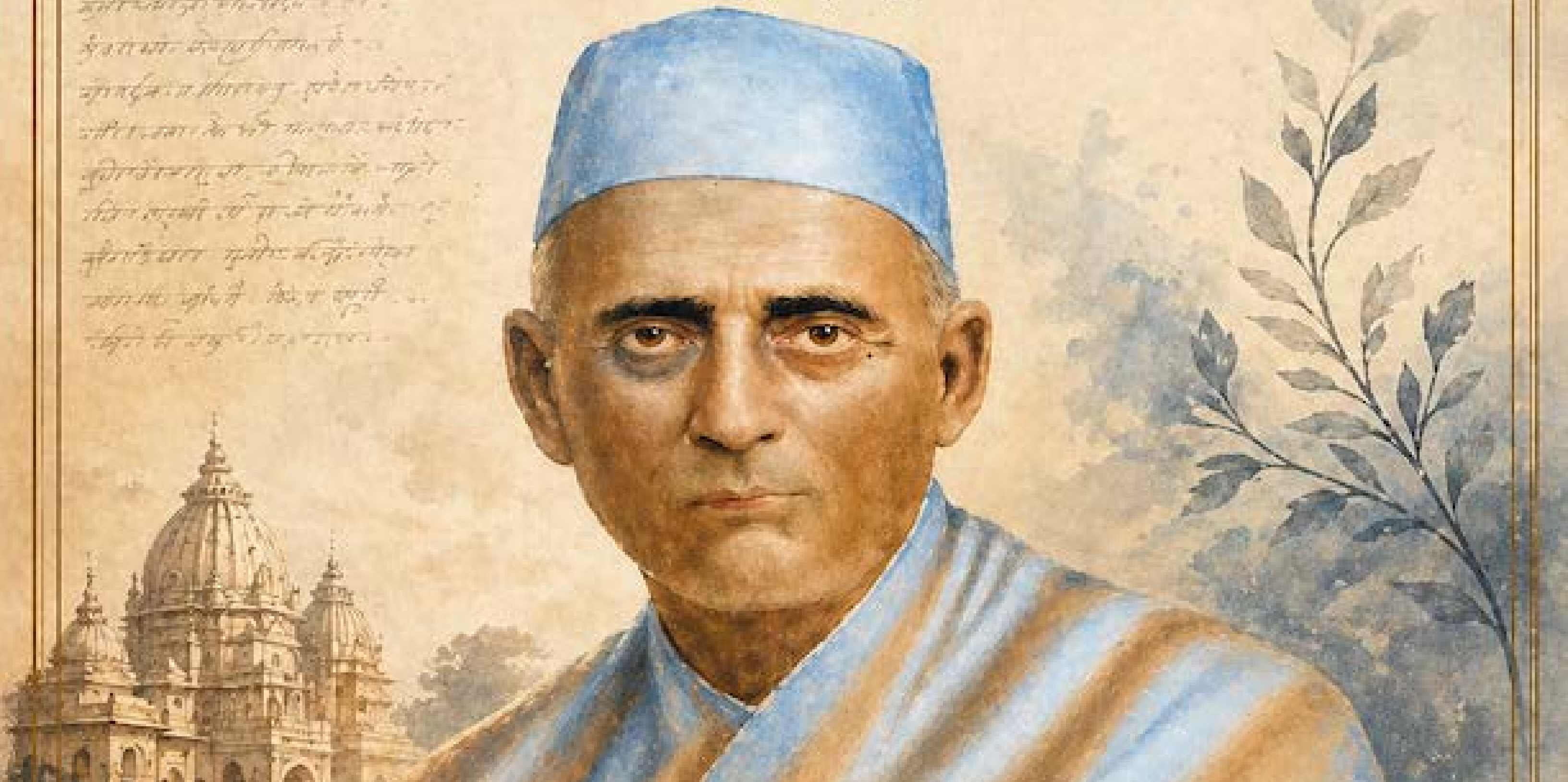

संकलन व संपादन

रूपा गुप्ता

राधामोहन गोकुल की अप्राप्य रचनाएँ

भाग-1

संकलन व संपादन

रूपा गुप्ता

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: जनवरी, 2026

© रूपा गुप्ता

हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम राधामोहन गोकुल के महत्त्व को

रेखांकित करने वाले प्रखर विवेचक

रामविलास शर्मा

को उनकी जन्मशताब्दी पर

सादर समर्पित

अनुक्रम

भूमिका	4
देशभक्त लाजपत : राधामोहन गोकुल	83
नेपोलियन बोनापार्ट	311
गुरु गोविंदसिंह जी: आर्य जाति के सच्चे उद्धारक तथा संरक्षक	534
परिशिष्ट	618

भूमिका

आधुनिक भारत की इमारत की नींव नवजागरण था । विभिन्न चरणों में घटित इस नवजागरण ने भारतीय समाज के अंतर्विरोधों और विसंगतियों से तादात्म्य स्थापित करते हुए उसकी शक्ति को सहेजा । भक्तिकाल के लोकजागरण के बाद रीतिकाल के वर्चस्व से स्तब्ध हिंदीभाषी क्षेत्र की मनीषा को सक्रिय करने का कठिन और जटिल दायित्व उठाने वालों के कष्टसाध्य परिश्रम का अनुमान लगाना सहज नहीं है। साथ ही, अतीत ही वर्तमान को प्रभावित नहीं करता वर्तमान भी अपनी दृष्टि भंगिमा से अतीत को प्रभावित करता है। स्थिति तब और संकटपूर्ण हो जाती है जब वर्तमान अपने पूर्वाग्रहों से संचालित हो अतीत का मूल्यांकन करता है। इसके खतरे तब और बढ़ जाते हैं जब 'आधुनिक भारत' औपनिवेशिक दृष्टि से संचालित हो अतीत के भारत को पिछड़ा, असभ्य, मूर्ख और बर्बर समझता है। इस प्रकार वह अतीत को नीचा दिखाकर वर्तमान को ऊँचा आसन देता है, और अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर देता है। इन औपनिवेशिक दृष्टि संपन्न विद्वजनों ने भारतीय नवजागरण विशेषकर हिंदी नवजागरण में केवल कमियाँ ही कमियाँ खोज निकालीं और अपने समय की हर समस्या का ठीकरा नवजागरण के सिर पर फोड़ा।

भारतीय रेनेसां से जैसी अपेक्षाएँ इसके मूल्यांकन कर्ताओं की थीं उन्हें पूरी करने में उनका वर्तमान भी अक्षम था। घनघोर आक्षेपों के इस घटाटोप के साथ उपेक्षा एक तटस्थ मूल्यांकन की संभावना को क्षीण बना दिया। स्थितियाँ ऐसी बनीं कि नवजागरण में कोई

सार्थक बिंदु खोजने वाला प्रत्येक शोधार्थी सुधारवादी, यथास्थितिवादी या पिछड़ा हुआ घोषित कर दिया गया। ऐसे शोधार्थियों और विद्वानों की तुलना में नवजागरण के विरुद्ध बोलने वाले स्वयं ही आधुनिक, प्रगतिशील और वैज्ञानिक सोच वाले प्रमाणित हो गए। इन संकटों के मध्य भी रामविलास शर्मा जैसे विद्वान डिगे नहीं और हिंदी में उनकी परंपरा भी चलती रही।

नवजागरण और सन् सत्तावन की क्रांति आपस में गहन रूप से संबद्ध हैं। ईस्ट इंडिया कंपनी ने सन् 1757 में प्लासी के मैदान में नवाब सिराजुद्दौला को हरा कर जिस उपनिवेशवादी आर्थिक दोहन का पंजा भारत पर गड़ाया था, एक सौ वर्षों में उसका शिकंजा इतना तंग हो गया कि सन् 1857 में स्वाधीनता का प्रथम संघर्ष लड़ा गया। 1764 में मुगल सम्राट शाहआलम को बक्सर युद्ध में हराकर बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी हासिल करने वाले अंग्रेज 1856 तक अवध पर कब्जा करते समय सभी देशी रियासतों को येन-केन-प्रकारेण हड़प चुके थे। जहाँगीर के दरबार में कोर्निशि करते टॉमस रो से बहादुरशाह ज़फ़र के सामने थाल में उनके बेटों के कटे सिर लेकर पहुँचे। अंग्रेज कमांडर हडसन तक अंग्रेजी शासन की लूट-खसोट, अन्याय-अत्याचार से जूझते भारतीयों की स्वाधीनता की प्रथम आकांक्षाओं को अंग्रेजों ने 'सिपाही विद्रोह' का नाम दिया। हमारे अंग्रेजी परस्त विद्वानों ने भी यही किया। सन् सत्तावन के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की डेढ़ सौवीं जयंती पर पहली बार सरकारी खर्चे पर व्यापक रूप से इसे इसी नाम से स्वीकारा गया जिससे रामविलास शर्मा एवं कुछ अन्य विद्वान बहुत पहले से पुकार रहे थे।

एशिया और अफ्रीका के उपनिवेशों से अंग्रेजों की एकमात्र आशा एवं सुचिंतित कार्य केवल और केवल इनका आर्थिक दोहन था। यहाँ दिखावे के सामाजिक सुधारों और विकास कार्यों का भी उद्देश्य अपने लक्ष्य को सुगम करना ही था। अंग्रेजों ने प्रथम चरण में भारतीय व्यापार पर एकाधिपत्य जमाने के लिए हर नीति-अनीति पर अमल किया। इसके लिए उन्होंने तैयार भारतीय माल को न्यूनतम कीमत पर खरीद कर उसे इंग्लैंड और यूरोप में बेचा। यह चरण मोटे तौर पर सन् 1757 से 1813 ई. तक का था। दूसरा चरण (1813-1858) आरंभ होने तक इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति ने व्यापार का तरीका बदल दिया। मुक्त व्यापार के औद्योगिक और पूंजीवादी शोषण के दौर में भारत से कच्चे माल ले उसे मानचेस्टर के कपड़ों के बाजार के रूप में बदल दिया। यहाँ की पारंपरिक हस्तकलाओं को नष्ट कर दिया गया। कुटीर उद्योग उखाड़ फेंका गया। साथ ही पूँजीवाद को उदारवादी चेहरा देने के लिए 'विकास' की विचारधारा सामने रखी गई। इसके अंतर्गत “इन अनपढ़, मूर्ख और बर्बर लोगों को मनुष्य बनाने के ईश्वर प्रदत्त अधिकार" के अतिरिक्त भारत को स्वशासन के लिए थोड़ा बहुत तैयार करने का प्रयास किया गया। इस दौर में जिन्हें "सुधारा" जाना था उनकी तीखी एवं कड़वी आलोचनाएँ की गई। मिशनरियों एवं अंग्रेज शोधकर्ताओं ने अपने सुधार प्रयासों का खूब प्रचार एवं हिंदू धर्म एवं आचार विचार पर जमकर प्रहार किया। शिक्षित भारतीय वर्ग का एक भाग अंग्रेज शोधकर्ताओं के साथ था तो एक हिस्से में अपनी संस्कृति के उन विशिष्ट तत्वों के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई जो उन्हें श्रेष्ठता बोध करवा सकते। सांस्कृतिक जागरण के रूप में यह राष्ट्रवाद का आरंभिक रूप था और धर्म

जिसके मुख्य कारकों में से एक था। धर्म उस समय विशेषतः सनातन धर्म जड़ता का प्रतीक माना गया, कालांतर में यह प्रवृत्ति और बढ़ती गई अतः 'धार्मिक' समाजसुधारकों को ही नहीं धर्म में, ईश्वर में आस्था रखने वाले पढ़े-लिखे (अर्थात् अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित) मध्य वर्ग को भी केवल 'पुनरुत्थानवादी' कहकर किनारे कर दिया गया। मुक्त बाजार व्यवस्था और बढ़ते प्रशासनिक दायित्वों की आवश्यकताओं पूर्ति के लिए कृषि उत्पादों से लेकर यातायात और शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों ने ऐसे अंग्रेजी दीक्षित मध्य वर्ग को भारतीय समाज का सबसे मुखर (वोकल) वर्ग बना दिया था। इस मुखर वर्ग ने अपनी समझ सामर्थ्य और आवश्यकतानुसार अंग्रेजों को समर्थन और सहयोग दिया। औपनिवेशिक शासन द्वारा कई स्कूल-कालेज और विश्वविद्यालय खोले गए। स्त्री शिक्षा अस्तित्व में आई। मिशनरियों ने इस शिक्षा पद्धति से जुड़कर अपनी धर्म-प्रचार की गतिविधियाँ तीव्र कीं। इस संदर्भ में यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि तत्कालीन औपनिवेशिक भारत मैं (और शायद अभी भी) सनातनधर्मी और इस्लाम का अनुयायी होना पिछड़ेपन और क्रिश्चियन होना तार्किक एवं प्रगतिशीलता का प्रमाण माना गया। सन् 1835 में लॉर्ड मैकाले द्वारा अंग्रेजी शिक्षा को अनिवार्य किये जाने के बाद भारत में तेजी से अंग्रेजी के प्रचार-प्रसार के साथ लोगों में ईसाई धर्म को ग्रहण करने की प्रवृत्ति भी बढ़ी। ईसाई मिशनरियों के जी तोड़ प्रयासों से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्रताड़ित समूहों ने बड़ी संख्या में धर्म परिवर्तन किया। धर्म परिवर्तन के पीछे ईसाई धर्म की श्रेष्ठता के स्वीकार भाव के साथ शासक के धर्म का होने से मिलने वाली सुविधाएँ भी एक कारण हो सकती हैं।